

* श्रीहरि: *

उज्जयिनी-महाकुम्भ-निर्णय

(श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज)

उज्जयिनी के कुम्भ के सम्बन्ध में इधर बहुत दिनों से विवाद चल रहा है । काशी तथा अन्यत्र के भी अधिकांश विद्वानों ने विक्रम संवत् २०१३ तदनुसार सन् १९५६ में तथा दृश्यवादी अनेक विद्वानों ने विक्रम संवत् २०१४ तदनुसार सन् १९५७ में कुम्भ का निर्णय दिया है । अखाड़ों का साधु-मण्डल विक्रम संवत् २०१४ के ही पक्ष में प्रचार कर रहा है । इस पक्ष में अधिकांश शुभ योग होने से साधुमण्डल उसे स्वीकार करता है । परन्तु विचारणीय विषय यह है कि अनेक शुभ योगों का सम्मान क्या सिंहस्थ वृहस्पति के साथ है या सिंहस्थ वृहस्पति के बिना भी शुभयोगों के कारण उज्जयिनी का कुम्भ मान्य होना चाहिए ? जहाँतक कुम्भ का प्रश्न है, उसमें सिंहस्थ वृहस्पति ही अनिवार्य है, जैसा कि निम्नोक्त वचन से स्पष्ट है—

“माधवे धवले पक्षे सिंहे जीवेऽजगे रवौ ।
तुलाराशौ निशानाथे स्वातिभे पूर्णिमातिथौ ॥
उज्जयिन्यां तदा कुम्भयोगो जातः क्षमातले ॥”

इस प्रमाण से यह निश्चित है कि उज्जयिनी के प्रथम कुम्भ के समय सिंह राशि में गुरु, मेष में सूर्य, तुला में चन्द्रमा, स्वाती नक्षत्र तथा वैशाख की पूर्णिमा तिथि थी । इनमें और सब योग तो प्रायः प्रतिवर्ष आ सकते हैं, किन्तु सिंह राशि का गुरु प्रायः १२ वर्ष में ही आता है, अतः उज्जयिनी का कुम्भ भी प्रायः १२ वर्ष में ही होता है ।

कमी कमी सुसाब्द होने के कारण ११ वर्ष में भी सिंहराशि का गुरु हो जाता है। सिंहस्थ गुरु की ही मुख्यता होने के कारण उस वर्ष उक्त कुम्भ ११ वें ही वर्ष होता है।

विक्रम संवत् २०१४ (सन् १९५७) में 'सूर्यसिद्धान्त' के अनुसार सिंहस्थ बृहस्पति नहीं रहता। 'ग्रहलाघव' की दृष्टि से भी यही बात है। मकरन्द के अनुसार भी सं० २०१४ में सिंहस्थ बृहस्पति नहीं है।

कुछ दृश्यगणितानुसारी 'जन्मभूमि' आदि पञ्चाङ्गों तथा बीजसंस्कार द्वारा दृग्गणितैक्यवादी पञ्चाङ्गों के अनुसार संवत् २०१४ में भी सिंहस्थ बृहस्पति रहता है। परन्तु, दृश्यगणितानुसारी केतकीपक्षीय पञ्चाङ्गकार केतकर सुसाब्द के कारण विक्रम संवत् २०१३ में ही सिंहस्थ-पर्व उचित मानते हैं। यह उज्जयिनी के ज्योतिषाचार्य श्रीसङ्कर्षण व्यास के 'आवन्तिक सिंहस्थ-पर्व' पुस्तक में उद्धृत श्री द० वे० केतकर की चिट्ठी से स्पष्ट है— 'परन्तु वर्षलोप होत असल्या मुले सं० २०१३ (ई० सन् १९५६) हे च पर्वोचित वर्ष होईल। वर्षलोपा मुले सं० २०१३, २०१४ उणे = २०१३ हे च योग्य वर्ष होतें'।

कहा जाता है कि व्यतीत वर्षों में जब दो कुम्भ ११ वर्ष में हुए हैं, सुसाब्द उसके पहले ही हो जाता है। कहा जाता है कि दृश्यपक्ष में अय-नांशमेद से इस समय प्रधान रूप से दो पक्ष हैं—एक रैवत (तिलक)-पक्ष और दूसरा चित्रापक्ष। दूसरा पक्ष केतकर का है, 'जन्मभूमि' पञ्चाङ्ग का भी इसी पक्ष में अन्तर्भाव है। रैवतपक्षीय दृश्यपञ्चाङ्ग के अनुसार २०१३ में ही सिंहस्थ गुरु है। केतकरपक्षीय दृश्यपञ्चाङ्ग के अनुसार यद्यपि २०१४ में भी वक्री होकर सिंहस्थ गुरु होता है, फिर भी स्वयं केतकर पर्वोचित वर्ष सुसाब्द के कारण सं० २०१३ को ही मानते हैं। बीजसंस्कार भी दृक्-

तुल्य बनाने के लिए ऐच्छिक होते हैं। इसमें कोई शास्त्रीय नियम नहीं है। इसीलिए काशी से प्रकाशित ५७ पक्षीय पोस्टर में तीन तरह का बीज-संस्कार दिया गया है। इसतरह भविष्य का दृक्प्रत्यय भी एकसा नहीं होता। इसीलिए दृक्प्रत्ययपक्षीय लोगों में भी उपयुक्त मतभेद हैं।

यह भी कहा जाता है कि सौर तथा चान्द्र मान के तुल्य ही बार्हस्पत्य मान भी होता है। उसके अनुसार लुप्तान्द को छोड़कर बीजादि के बिना ही १२ वर्ष में सिंहस्थ बृहस्पति होता है।

उज्जैन की वेधशाला के प्रमुख पण्डित पुरुषोत्तम जोशी ने स्पष्ट कहा है कि 'वेधशालाओं के अनुसार भी सन् १९५६ में ही सिंहस्थ बृहस्पति है।' धर्मशास्त्रों के अनुसार यन्त्रवेध एवं बीज संस्कार शशि-सूर्योपराग, शृङ्गोन्नति, ग्रहयुति तथा उदयास्तादि-कथन में ही ग्रहण करना बतलाया गया है। अदृष्टफलसिद्धयर्थ (धर्मकार्यों के लिए) बीज संस्कार के बिना ही सूर्यसिद्धान्तादि आर्षग्रन्थानुसारी तिथ्यादि ग्रहण करना आवश्यक बतलाया गया है। इस दृष्टि से सं० २०१३ (सन् १९५६) में ही बीजसंस्काररहित आर्ष गणना के अनुसार सिंहस्थ-बृहस्पति ठहरता है। दृग्गणित के अनुसार कभी कभी ५० घड़ी की हो तिथियाँ रह जाती हैं। तदनुसार गणेशचतुर्थी, एकादशी, श्राद्ध आदि के लिए धर्मशास्त्रोक्त काल प्राप्त नहीं हो सकते। 'जिस कर्म का जो काल होता है, तत्कालव्यापिनी तिथि ही ग्रहण करनी चाहिए' यह धर्मशास्त्र को सम्मति है। यदि प्रथम दिन कर्मकाल के पश्चात् तिथि प्रारम्भ होकर दूसरे दिन कर्मकाल प्रारम्भ होने के पहले ही समाप्त हो गयी, तो फिर धर्मशास्त्रोक्त काल न मिलने से क्या आस्तिकों को व्रत-श्राद्धादि का त्याग कर देना चाहिए? धर्मस्वरूप अदृष्ट विहितकर्मजन्य होता है। उचित काल में जायमान कर्म अदृष्ट उत्पन्न करता है। 'कर्मणो यस्य यः कालस्तत्का-

लव्यापिनी तिथिः' इस वचन से कर्मकालव्यापिनी तिथि ही ग्रहण करना उचित है। जब दोनों दिन कर्मकालव्यापिनी तिथि हो अथवा एक दिन ही हो, तो कौन तिथि ग्रहण करना चाहिए, इत्यादि विषयों में धर्मशास्त्रीय वचनों के आधार पर निर्णयग्रन्थों में पर्याप्त विचार किया गया है।

दो प्रकार की तिथियाँ प्रसिद्ध हैं। एक सूर्य-चन्द्र के अन्तर के आधार पर अन्तरलक्षणा और दूसरी चन्द्रकला के ह्रास-विकाश के अनुसार कलालक्षणा। 'विष्णुधर्मोत्तर', 'कालमाधवादि' ग्रन्थों में यह स्पष्ट है। कला के अनुसार तिथि की ५ घड़ी तक वृद्धि और ६ घड़ी तक ह्रास हो सकता है। यही 'वाणवृद्धी रसक्षयः' से कहा गया है। इन्हीं दोनों प्रकार की तिथियों में कर्मकालव्यापिनी किस तिथि का ग्रहण करना चाहिए, इस सम्बन्ध में यह निर्णय है कि दैव, पितृ सभी कर्मों में कलालक्षणा तिथि की ही कर्मकाल-व्याप्ति ग्रहण करनी चाहिए, क्योंकि प्रतिपदा, द्वितीया तृतीया आदि तिथियाँ कला की संख्या से ही सम्बद्ध होती हैं। चन्द्र की प्रथम कला की वृद्धि या ह्रास से प्रतिपदा, द्वितीय कला के ह्रास या वृद्धि से द्वितीया तिथि होती है— 'तन्यते कलया या सा तिथिः प्रोक्ता मनीषिभिः।' पितरों का चन्द्रलोकनिवास माना जाता है, इसलिए सत्सम्बन्धी कर्म का काल चन्द्रकलोलक्षित ही होना चाहिए। भूमण्डल कर्मभूमि है, कला द्वारा ही इसका चन्द्रलोक से सम्बन्ध है, अतएव कलालक्षणा तिथि ही कर्ता के अदृष्टविशेष का आधान करनेवाली होगी। चन्द्र-सूर्य के अन्तर द्वारा जो तिथि होगी, उसका भी कला द्वारा ही भूमि से सम्बन्ध होगा। अतः दृक्प्रत्ययोपयोगी काल-निर्णय में ही अन्तरलक्षणा तिथि का उपयोग है, अदृष्टविशेषाधान में नहीं। अतएव 'विष्णुधर्मोत्तर' में कहा गया है कि 'यन्त्रवेधादिना ज्ञातं यद्बोजं गणकैस्ततः'। ग्रहणादि परीक्षेत न तिथ्यादि कदाचन ॥' अर्थात्

यन्त्रवेधादिद्वारा विज्ञात वीजकर्म का सूर्योपरागादि में ही उपयोग करना चाहिए, श्राद्ध-व्रतादि तिथियों के निर्णय में नहीं। सङ्कष्टचतुर्थी में चन्द्रोदय-काल में कज्जालक्षणा चतुर्थी तिथि की व्याप्ति लेनी चाहिए। वही धर्म-शास्त्रोक्त अदृष्टाधायिका होगी। चन्द्रोदय-काल का अन्तरलक्षणा से निर्णय करना चाहिए, क्योंकि दृक्प्रत्यय सूर्य-चन्द्रान्तरानुसारी ही होता है। इस प्रकार के विचार 'आनन्दाश्रम, पूना' से प्रकाशित 'धर्मतत्त्वनिर्णय' में मिलते हैं।

बेलगांव में हुई मध्वसम्प्रदाय के आचार्य श्रीसत्यध्यान तीर्थ की श्रध्यक्षता में एक महती सभा का निर्णय भी यही है कि 'श्रौत-स्मार्त अदृष्टफलक कर्मानुष्ठान सूर्यसिद्धान्तानुसारी ग्रहों के अनुसार ही करना चाहिए। ग्रहण, शृङ्गोन्नति, यात्रा, विवाहोत्सव, जातकादि के समयज्ञान के लिए, वीजसंस्कारसंस्कृत ग्रहों का ही उपयोग करना चाहिए।' तञ्जौर, मैसूर, अनन्तशयनम्, मद्रास आदि के पुस्तकालयों से प्रमाणग्रन्थ मँगाकर सुविचारपूर्वक यह अन्तिम निर्णय किया गया है तथा यही पक्ष प्रवृत्त है। इस पक्ष में प्रमाण-वचन नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

‘यन्त्रैः स्पष्टतरोऽत्र जन्मसमयो वेद्योऽथ खेटाः स्फुटा

यत्पक्षे हि घटन्त उद्गम इहेत्यादि’ (इति केशवाचार्याः)।

अदृष्टफलसिद्धि के लिए, सूर्यसिद्धान्तानुसार ही गणित करना चाहिए। शाके १५०० में ‘सिद्धान्ततत्त्वविवेक’ में निर्णयसिन्धुकार श्रीकमलाकरभट्ट ने यह कहा है—

“अदृष्टफलसिद्धयर्थं यथार्काद्गणितं कुरु।

गणितं यद्विदृष्टार्थं तद् दृष्टयुद्भवतः सदा ॥

अदृष्टफलसिद्धयर्थं निर्बीजार्कोक्तमेव हि ।

प्रमाणं श्रुतिवद्ग्राह्यं कर्मानुष्ठानतत्परैः ॥'

'शाकल्यसंहिता' में भी कहा है कि तिथ्यादि-साधन में बीजसंस्कार नहीं करना चाहिए तथा राहुदर्शनादि से अतिरिक्त स्थल में दृक्सिद्ध तिथि नहीं लेनी चाहिए—

“तिथ्यादिसाधने क्वापि नार्केन्द्रोर्बीजयोग्यता ।

राहुदर्शनतोऽन्यत्र दृक्सिद्धा नेष्यते तिथिः ॥”

कालिदास ने लिखा है कि अधिकमास, क्षयमास आदि सूर्यसिद्धान्ता-नुसारी गणित से हो सिद्ध करना चाहिए—

“श्रीसूर्यसिद्धान्तमतोद्भवार्कात् साध्यौ तदा तावधिकक्षयाख्यौ ।

मासौ तदा सङ्क्रमकाल एव साध्यः सदा हौरिकशास्त्रविद्भिः ॥’

(ज्योतिर्विदामरणे) ।

कलालक्षणा तिथि का ही ग्रहण 'स्कन्दपुराण' में भी लिखा है—

‘अमादि तौर्णमास्यन्ता या एव शशिनः कलाः ।

तिथयस्ताः समाख्याताः षोडशैव वरानने ॥’

‘सिद्धान्तशिरोमणि’ के मरीचिभाष्य में भी इसी का समर्थन किया गया है—

‘मंस्यन्ते परिमीयन्ते स्वकलावृद्धिहानितः ।

मास एते स्मृता मासास्त्रिंशत्तिथिसमन्विताः ॥’

‘श्रीविष्णुधर्मोत्तर’ में कहा है कि ग्रहणादि में ही बीजसंस्कारसंस्कृत गणित लेना चाहिए—

‘यन्त्रवेधादिना ज्ञातं यद्बीजं गणकैस्ततः ।

ग्रहणादि परीक्षेत न तिथ्यादि कदाचन ॥’

‘कालनिर्णय’ में लिखा है कि प्रतिदिन तिथि, नक्षत्र, योगादि के आनयन में बीजसंस्काररहित सूर्य-चन्द्र का ग्रहण करना चाहिए और ग्रहणादि में बीजसंस्कारवान् सूर्य-चन्द्र का ग्रहण करना चाहिए—

“प्रत्यहं तिथिनक्षत्रयोगस्यानयने विधुः ।

अबीजसंस्कृतो ग्राह्यो ग्रहणादौ तु बीजयुक् ॥”

श्रीकालिदास ने कहा है कि अधिक से अधिक ५ घड़ी, ३० पल वृद्धि और अधिक से अधिक ६ घड़ी, १५ पल हास होता है—

‘वृद्धिचयौ स्तः परमौ तिथौ सदा व्यर्धा रसाः सांग्रिरसाश्च नादिकाः ।’
(ज्योतिर्विदाभरणे) ।

श्रीवासुदेव शास्त्री अभ्यङ्कर का कहना है कि एतन्मूलक ही ‘वाणवृद्धी रसक्षयः’ (पाँच घड़ी वृद्धि और छः घड़ी हास) यह उद्घोष चल पड़ा है ।

शक संवत् १०३८ में बने हुए ‘ज्योतिषकरणोत्तम’ ग्रन्थ में लिखा है कि तिथि, नक्षत्र, वैधृत्याख्य महापात आदि से अन्यत्र ही बीजसंस्कार करना चाहिए—

‘इन्दोस्तिथ्यूक्षलाटादेरन्यत्रोक्ता चलक्रिया ।’ (द्वितीयेऽध्याये) ।

इस सम्बन्ध में प्रमाणपुञ्ज का उद्धरण नीचे दिया जाता है—

‘शैघ्रथात्स्फुटास्ते तु भगोलगाः स्युस्तिथ्यूक्षहोराद्युपभोगयोग्याः ।
भूगोलगास्ते विहगाः स्फुटाः स्युश्चायोपरागप्रभृतौ तु योग्याः ॥,,
(ज्योतिर्निबन्धे) ।

“द्वितीयं पापदृष्टीनां दृक्कर्म मुनिसत्तम ।

द्वितीयमेव दृक्कर्म नेच्छन्त्युत्तमदृष्टयः ॥

शास्त्रीयव्यवहारे तु लौकिकं निष्प्रयोजनम् ।

केचिदन्येऽपि नेच्छन्ति तदप्रत्यक्षकारणात् ।”

(ब्रह्मसिद्धान्ते चतुर्थेऽध्याये) ।

“चन्द्रोच्चस्य तथा राहोः चन्द्रार्कग्रहणादिषु ।
आवश्यकत्वात् कर्त्तव्यं न तिथ्यानयनादिषु ॥”

(गणकानन्दे (आज से ५०० वर्ष पूर्व) ।

श्रीविद्यारण्यकृत ‘दृग्गणितप्रमा’ में, जो आज से कम से कम ६०० वर्ष पूर्व निर्मित है, बतलाया गया है कि नित्यकर्मों में सूर्यसिद्धान्तानुसारी गणित के अनुसार, नैमित्तिक कर्मों में दृग्गणित के अनुसार और काम्य कर्मों में दोनों के अनुसार ग्रहों का विचार करना चाहिए । दृग्गणित के अनुसार तिथियों का अन्तिम क्षय १० घड़ी, १९ पल तक हो सकता है । यदि किसी तिथि का परम क्षय हो और वह अपराह्ण के अनन्तर प्रवृत्त हो और दूसरे दिन मध्याह्नप्रवृत्ति के पहले ही वह समाप्त हो जाय, तो ऐसी स्थिति में उस तिथि का श्राद्ध क्या आस्तिक लोग छोड़ दें ? अतः धर्मशास्त्र के अनुसार ५ घड़ी, ३० पल की वृद्धि तथा ६ घड़ी, १५ पल का हास ही नित्यकर्मों में लेना चाहिए—

“सूर्यसिद्धान्तशास्त्रेण समवेता ग्रहाः सदा ।

नित्यकर्मण्युपादेया न तु दृग्गणितागताः ॥

नैमित्तिके कर्मणि तु ग्राह्या दृग्गणितागताः ।

काम्ये तूभयतो ग्राह्यास्तदन्यत्रोपपाद्यते ॥

तिथ्यादिषु तु कर्त्तव्ये काम्ये कर्मणि नित्यवत् ।

ग्राह्यास्तु नैमित्तिकवत् कर्त्तव्ये ग्रहणादिषु ॥

मया कालस्य सर्वस्य निर्णयं वदतोदितम् ।

परेद्युरपराह्णे तु पार्वणश्राद्धनिर्णये ॥

अपराह्णव्याप्त्यभावे सायाह्णव्याप्तिरिष्यते ।

उभयोरप्यभावे तु श्राद्धं त्याज्यं किमास्तिकैः ॥

एकोनविंशतिपलसहिता दश नाडिकाः ।

भवेद्दृग्गणितानीततिथीनां परमः क्षयः ॥

पूर्वे दिने परदिने परमक्षयसंयुते ।

कालद्वयव्याप्त्यभावात् श्राद्धं त्याज्यं किमास्तिकैः ॥

सार्धबाणसपादाङ्गघटीवृद्धिक्षयान्विताः ।

गृहीता धर्मशास्त्रे हि तिथयो नित्यकर्मसु ॥

स्मृतीनाञ्च पुराणानामीदृक्त्तिथिवशात् सदा ।

निर्णयो युज्यते नो चेत्स्मृत्यादीनामसङ्गतिः ॥

परःसहस्रकार्येषु धर्मशास्त्रोदितेषु हि ।

तिथ्याद्यन्तघटीमानवशान्निर्णय इष्यते ॥

तन्निर्णयस्यैव सदा स्यादसङ्गतिरन्यथा ।

तस्माद्युक्तं मया प्रोक्तं गृहीतव्यं सदास्तिकैः ॥'

'सूर्यसिद्धान्तपञ्चाङ्गं विलोक्यैव प्रवर्तयेत् ।

प्रमाणं तदिति ज्ञेयमन्यथा व्याकुलं भवेत् ॥'

(आनन्दगिरिकृत स्मृतिसमुच्चये) ।

“सौरोपनिषदेवाद्या कल्पे त्वस्मिन् सनातनी ।

यामादित्यः स्वयं प्राह मयाय परिपृच्छते ॥

कालज्ञानं तु तत्सिद्धं विशुद्धं नान्यदुच्यते ।

तद्विरुद्धं तु यत्सर्वमपरिप्राह्यमेव तत् ॥' (भगवान् व्यासः) ।

“द्वितीयस्फुटसिद्धश्च ब्राह्मो दृग्विषयो विधुः ।

स्पष्टीकरिष्यते चैतत् ऊर्ध्वशृङ्गोन्नतौ विधोः ॥'

(तन्त्रसंग्रहश्लोकव्याख्यायां नीलकण्ठसोमयाजिविरचितायाम्, शाके

‘ग्राह्योऽयमेव भूस्थानां द्रष्टृणां चन्द्रमाः सदा ।
तिथिनक्षत्रयोगादौ लाटे चान्यो भगोलगः ॥’

(तन्त्रसंग्रहश्लोकव्याख्यायां नीलकण्ठः) ।

“विधुरयमुपरागे खेचराणाञ्च योगे
निजतनुसितमानाद्यङ्गलानां प्रसङ्गे ।
कुतलगजनवर्यैरग्रगण्योऽप्यगण्यः
सकलतिथिभयोगोत्पातवृद्धिक्षयेषु ॥”

(तन्त्रसंग्रहश्लोकव्याख्यायाम् नीलकण्ठसोमयाजिविचितायाम्) ।

“मान्दैककर्मसंस्कृतचन्द्राकौ तिथिभयोगकरणानाम् ।
योगयौ स्यातां ग्रहणे चन्द्रोऽन्यैः संस्कृतो ग्राह्यः ॥
ग्रहणग्रहोदयास्तशृङ्गोन्नतिखचरयोगकालेषु ।
दृक्सिद्धेन्दुः साध्यः स्यादेवं नेतरक्रियासु बुधैः ॥”

(शङ्करभारतीकृत खचरदर्पणे) ।

“सूर्याशुपुरुषेणोक्तं तन्त्रं तिथ्यादिसम्मतम् ।
ग्रहणादौ तु वक्ष्यामि सविशेषमथो शृणु ॥”

(भार्गवः) ।

“शृङ्गोन्नतियुतिच्छायाग्रस्तास्तोदयसाधने ।
बीजेन संस्कृताः खेटास्तद्धीनास्त्वन्यकर्मसु ॥” (गर्गः) ।

“शृङ्गोन्नतौ ग्रहयुतौ ग्रहणे तथास्ते

छायानिरीक्षणविधायुदये च देयम् ।

बीजं फलं तिथिभयोगविधौ त्वदेयं

चन्द्रे प्रदेयमखिलं क्षितिजादिकेषु ॥”

(लल्लः) ।

“वेलाहीनेऽन्तरं यत्तद्बीजं मत्त्वैव कालजम् ।
 कर्माहं स्वचरं शुद्धं नाशयन्त्यधमा बलात् ॥
 रविणात्पान्तरात्त्यक्तं तद्बीजं विधिनादृतम् ।
 यन्त्रैश्च बहुभिस्तज्जस्फुटखेटोदितौ च यौ ॥
 दृष्टार्थं निर्णयादेशौ अदृष्टार्थं न तौ यतः ।
 अदृष्टफलसिद्धयर्थं यथार्काद्गणितं कुरु ॥
 गणितं यद्वि दृष्टार्थं तददृष्टयद्भवतः सदा ।”

(कमलाकरभट्टकृते सिद्धान्ततत्त्वप्रविवेके, १५०० शाके) ।

“इत्थं तिथ्यादितथ्यावयवपरिगता पञ्जिका स्थूलसंज्ञा
 प्रोक्ता बन्हागमज्ञैः प्रतिशरदुदयं नित्यनैमित्तिकेषु ।
 एकादश्यादिपर्वत्रतसुरयजनश्राद्धदेवोत्सवादौ
 शस्ता विस्तार्य सूक्ता भवतु भुवि हिता बृंहिता संहितार्यैः ॥”
 (चन्द्रशेखरकृत सिद्धान्तदर्पणे पञ्चमप्रकाशे) ।

“उद्वाहोपनयप्रयाणनिलयक्रत्वादिषु द्वाङ्महा-
 रम्भे स्विष्टफलाप्तये किल यदा सूक्तमोच्यते पञ्जिका ।
 दृक्सिद्धागममार्गाणग्रहणमुद्योगोदयास्तं महा-
 पाताद्यं तिथिभादिकार्यमनया सूक्तमार्कचन्द्रोद्भवा ॥”
 (पष्ठप्रकाशे) ।

“यात्राविवाहोत्सवजातकादौ खेटैः स्फुटैरेव फलस्फुटत्वम् ।
 स्यात् प्रोच्यते तेन नभश्चराणां स्फुटक्रिया दृग्गणितैक्यकृत्वा ॥”
 (भास्कराचार्यकृत सिद्धान्तशिरोमणौ स्पष्टाधिकारे, शाके १०७२) ।

इति भास्कराचार्याणां विशेषविषयेण वाक्येन दृग्गणितैक्यकृत-
 स्फुटक्रिया यात्राविवाहोत्सवादिविशेषविषयेष्वेव ग्राह्या, न तु धर्म-

शास्त्रोपयोगितिथ्याद्यानयने इति सिद्ध्यति । एतेनैव भास्कराचार्येण “स्थूलं कृतं भानयनं यदेतज्ज्योतिर्विदां संव्यवहारहेतोः । सूक्ष्मं प्रवक्ष्येऽथ मुनिप्रणीतं विवाहयात्रादिफलप्रसिद्ध्यै” इति निबद्धम् । तत्र वासना—‘इह यन्नक्षत्रानयनं कृतं, तत्स्थूलं लोक-
व्यवहारार्थमात्रं कृतम् । अथ पुनस्त्यवशिष्टगर्गादिभिर्यद्विवाह-
यात्रादौ सम्यक् फलसिद्ध्यर्थं कथितं, तत्सूक्ष्ममिदानीं प्रवक्ष्यते,
इति ज्योतिर्वित्संव्यवहारविषये धर्मशास्त्रोपयोगिनक्षत्रज्ञाने
यात्राविवाहादिफलसिद्धिरूपकार्ये च स्थूलसूक्ष्मभेद इति नक्षत्र-
गणनादौ द्वैविध्यमङ्गीकृतम् इति केषुचित्कर्मसु दृक्तुल्यग्रहाणां
केषुचित्कर्मसु दृक्तुल्यतारहितस्पष्टग्रहाणामुपयोग इत्यत्रापि द्वैवि-
ध्यमभिप्रेतमिति ज्ञायते ॥”

“श्रीभास्कराचार्याणामयमेवाभिप्राय इत्यत्र नृसिंहदैवज्ञोऽपि प्रमाणम् । स एव यथाह एतत्स्पष्टाधिकारव्याख्यायाम्—‘ततो धर्मशास्त्राद्युपयुक्ततिथिसाधनं नक्षत्रकरणज्ञानञ्चोक्तम्, दृक्सि-
द्ध्यर्थं ब्रह्मगुप्तमतेन न तत्कर्मोक्तमिति ।”

“नृसिंहदैवज्ञेनापि सूर्यसिद्धान्तवासनाभाष्ये ‘शृङ्गोन्नतिग्रहयु-
तिग्रहणोदयास्तछायादिषु दृग्गणितैक्यान्यथानुपपत्त्या मुनिकृतप्र-
न्थजनितग्रहेषु तदन्तरं देयमेवेत्युक्तत्वेन ग्रहणादिविशेषविषय-
स्वबीजसंस्कारो देयो न तु तिथ्याद्यानयनादिष्विति सिद्ध्यति ॥”

“तिथयस्त्रिंशदक्षाणि सप्तविंशतिरेव हि ।

तावन्तो भगणे योगाः करणानि नभोरसाः ॥

अर्कोनचन्द्रलिप्ताभ्यस्तिथयः करणानि च ।

ग्रहस्य भाजि सार्केन्द्रोर्योगाः स्युर्भोगभागिताः ॥

प्रवेशनिर्गमौ तेषां तादृक् भुक्त्या मुहुस्तथा ।

सौकार्ये वर्तमानानां तत्तन्मध्यस्फुटग्रहैः ॥”

(ब्रह्मसिद्धान्ते तृतीयेऽध्याये) ।

एवमादिभिः प्रमाणैः श्रौतस्मार्ताद्यदृष्टकर्मविषये सूर्यसिद्धान्तो-
क्तकेवलमन्दफलसंस्कृतरविचन्द्राभ्यामेव बाणवृद्धिरसक्षयरूपति-
थ्याद्यानयनं कार्यमिति सिद्धम् ।

यत्तु अर्वाचीनाः सप्तवृद्धिदशक्षयरूपतिथीनां प्राचीनैरक्षतत्वेनै-
तासां दृष्टफलकर्मविषयतया अन्यासाञ्च अदृष्टकर्मविषयतया
द्वैविध्यस्य तदुक्तत्वमित्याक्षिपन्ति, तत्तु पूर्वाचार्यग्रन्थानवलोकन-
निबन्धनत्वादुपेक्ष्यम् । तथाहि तेषां (पूर्वाचार्याणाम्) वचनानि—

‘इन्दूच्चोनार्ककोटिघ्ना गत्यंशा विभवा विधोः ।

गुणोप्यर्केन्दुदोः कोट्योः उपपञ्चाशयोः क्रमात् ॥

फले शशाङ्कतद्गत्योर्लिप्त्याद्यौ स्वर्णयोर्वधे ।

ऋणे चन्द्रे धनं भुक्तौ स्वर्णसाम्यवधेऽन्यथा ॥’

(इति लघुमानसे मुञ्जालः) ।

अयं संस्कारो नार्यः योगसाधनेन क्रियते तस्य पूर्वरूपेक्षित-
त्वादिति मुञ्जाल आह—“एवं लघुमानसतद्व्याख्यानाभ्यां
बाणाधिकवृद्धिरसाधिकक्षयो येन तिथ्याद्युत्पादकाः संस्काराः
पूर्वैर्ज्ञाता अपि तिथ्याद्यानयने अग्राह्या इति उपेक्षिता इति
ज्ञायते ॥”

“रवीन्दुमन्दसंसिद्धतत्तत्तिथ्यादिभोगतः ।

स्यातां तत्कालबीजोत्थौ बाणवृद्धिरसक्षयौ ॥

अतः पैतृककार्यादौ तत्कालचरबीजकैः ।

बाणवृद्धिरसत्तोणा नान्या ग्राह्या तिथिः क्वचित् ॥'
(श्रीनिवासतीर्थीये धर्मशास्त्रे) ।

“हृक्सिद्धमध्यमरवेः कृत्वा स्फुटमत्र मन्दचन्द्रस्य ।
हृक्संस्कारैः कार्यं स्पष्टत्वं पञ्चभिस्तु तान् वक्ष्ये ॥
हृक्सिद्धभानुबाह्ये फलविकला साक्षिबाणभक्तफलम् ।
लिप्ताद्यं पूर्वकृताद् व्यत्ययतः कार्यमत्र पुष्पवतोः ॥
पातो न चन्द्रबाहुज्या कोटिज्या परस्परेण हता ।
पञ्चहता फलधनमृणभोजे युग्मे पदे स्थिते केन्द्रे ॥
चन्द्रोच्चाच्छ्रोदितरविकोटिज्या व्यर्कविधुभुजगुणेन निहता ।
कलीकृता सा तिथिहता शशिमन्दहारदृग्लब्धा ॥
भागादिकमिन्दूच्चोनरवौ मकरादि राशिषट्कस्थे ।
व्यर्केन्दुजूकादिगतो यदि धनमृणमजादिसंस्थश्चेत् ॥
कर्क्यादिस्था कोटिज्या व्यर्केन्दौ तु मेषमुखसंस्थे ॥
स्याद्धनमेतद्व्यर्केन्दौ जूकादिस्थिते गृहे तु ऋणम् ॥
व्यर्केन्द्रोर्बाहुज्या कोटिजन्योन्यगुणितराशिः स्यात् ।
लिप्ताद्यं फलभोजे स्वं युगो त्वर्णमन्वहं रवौ ॥
सायनसूर्यभुजज्या कोटिज्या संहता च पुनरेषा ॥
सत्यंघ्रिवेदनिघ्ना प्राणकलान्तरमितीह सा प्रोक्ता ।
प्राणकलान्तरनिहता ग्रहगतयश्चक्रलिप्तिका विहता ॥
लिप्तादिकं भवेत्फलभोजे ऋणं युग्मगे धनं सूर्ये ॥
संस्कारपञ्चकैरेतैरिन्दुहृक्समान एव भवेत् ।
गतिरस्य तु पूर्वापरखगयोः स्यादनन्तरं गतैष्येण ॥”

इत्यादिश्लोकैः षडधिकसप्तशतावधिभूता (७०६) सप्तवृद्धि-
कारिका गतिरुपपादिता । एवं बाणवृद्धिरसत्तयापेक्षयाधिकवृद्धि-

क्षयोपेततिथ्यादीनामपरिज्ञाने तन्निषेध एव न सञ्जायेत । इति निषेधान्यथानुपपत्त्या प्राचीनैरधिकवृद्धिद्वयसम्पादकाः संस्कारा ज्ञाता अपि श्रौतस्मार्ताद्यदृष्टफलकर्मविषये अग्राह्या इत्येवोपेक्षिता इति सिद्धम् ।”

इस वर्ष (संवत् २०१२ में) दृक्मन्तीय अनार्षगणितागत सूर्य के अनुसार अधिक मास आश्विन आता था और सूर्यसिद्धान्तीय गणित से भाद्रपद, किन्तु किसी भी ज्योतिषी ने अपने पञ्चाङ्ग में आश्विन अधिक मास नहीं बतलाया, भाद्रपद को ही अधिकमास सब ने माना है । यही शास्त्रसम्मत भी है । जैसा कि कालिदास ने कहा है—“श्रीसूर्यसिद्धान्तमतो-द्भवार्कात् साध्यौ तदा तावधिकक्षयाख्यौ ; मासौ तथा सङ्क्रमकाल एव साध्यः सदा हौरिकशास्त्रविद्भिः ॥” (ज्योतिर्विदाभरणे) ।

इन सब वचनों के आधार पर सूर्यसिद्धान्तीय निर्वीज गणित से सं० २०१३ के ही वैशाखमास में सिंहराशि का गुरु रहता है, अतः उसी समय उज्जैन में कुम्भपर्व मानना शास्त्रसम्मत है । जो लोग इतिहास, पुराण तथा धर्मशास्त्रों में विश्वास नहीं रखते, वे भले ही चाहे जो कुछ कहें । किन्तु जो लोग इतिहास, पुराण तथा धर्मशास्त्रों में पूर्ण विश्वास रखते हैं, उन लोगों के लिए तो उपर्युक्त निर्णयानुसार सं० २०१३ (सन् १९५६) में ही उज्जयिनी का कुम्भ शास्त्रीय एवं कल्याणकारक है ।

इस निर्णय पर अनेक विद्वानों एवं धार्मिक संस्थाओं ने अपनी सहमति प्रकट की है, जिनमें से कुछ के नाम यहाँ लिखे जाते हैं—

१—अ० भा० भारतधर्ममहामण्डल ।

२—अ० भा० वर्णाश्रमस्वराज्यसङ्घ ।

३—अ० भा० धर्मसङ्घ ।

४—काशी विद्वत्परिषद् ।

५—अ० मा० परिषद्-महापरिषद् ।

६—श्री १००८ जगद्गुरु शङ्कराचार्य शारदापीठाधीश्वर स्वामी
अभिनवसच्चिदानन्दतीर्थजी महाराज, द्वारका ।

७—श्री १००८ जगद्गुरु शङ्कराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी
कृष्णबोधाश्रमजी महाराज, जोशीमठ ।

८—श्री १००८ परमहंस परिव्राजकाचार्य महामण्डलेश्वर दण्डी स्वामी
श्रीङ्कराश्रमजी महाराज ।

९—श्री १००८ रामानुजाचार्य देवनायकाचार्यजी महाराज, काशी ।

१०—श्री पं० म० म० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ।

११—श्री पं० रामयश त्रिपाठी (श्रीधर्मसङ्घ महाविद्यालयाध्यक्ष काशी)

१२—श्री पं० म० म० नारायणशास्त्री खिस्ते (भू० पू० प्रिंसिपल
राजकीय सं० म० विद्यालय, काशी) ।

१३—श्री पं० ताराचरण भट्टाचार्य (साहित्याचार्य, शान्त्रवारिधि) ।

१४—श्री पं० कालीप्रसादजी मिश्र (भू० पू० प्रा० वि० वि० ध्यक्ष
का० हिं० वि० वि०) ।

१५—श्रीपरिषदराज राजेश्वरशास्त्री द्रविड़ (श्री व० शा० सा०
वे० वि०) ।

१६—श्री पं० सत्यनारायण शास्त्री (वैद्यसम्राट्, पद्मभूषण) ।

१७—श्री पं० रामव्यास ज्योतिषी (का० हिं० वि० वि०)

१८—श्री पं० हरिराम शास्त्री (न्यायाचार्य) इत्यादि ।

—

सन्मार्ग प्रेस, टाउनहाल बनारस :